## ।। अथ श्रीसाईसच्चरित ।। अध्याय १९ वा ।।

।। श्रीगणेशाय नमः ।। श्रीसरस्वत्यै नमः ।। श्रीगुरुभ्यो नमः ।। श्रीकुलदेवतायै नमः ।। श्रीसीतारामचंद्राभ्यां नमः ।। श्रीसद्‌गुरुसाईनाथाय नमः ।। सूक्ष्माहूनि सूक्ष्म अत्यंत। महताहूनि अत्यंत महत। ऐसें आब्रह्मस्तंबपर्यंत। वस्तुजात हा साई ।।१।। ऐसिया सद्वस्तूसी पाहीं। रंगरूपादि आकार कांहीं। देऊनि पाहों चर्मचक्षूंहीं। इच्छा ही उदेली अंतरीं ।।२।। सूर्यास काडवातीची आरती। भक्तिभावें सौर करिती। किंवा गुळाचा करूनि गणपती। गूळ निवेदिती गाणपत्य ।।३।। अथवा महार्णवाच्या मधूनि। ओंजळीनें घेऊनि पाणी। अर्घ्यार्पण तयालागूनि। सकृद्दर्शनीं अनुचित ।।४।। सूर्यार्णव महाप्रभाव। परि ते पाहती भक्तभाव। उचितानुचिता कैंचा ठाव। भक्तगौरव त्यां काज ।।५।। ''समानशीले व्यसनेषु सख्यम्''। आहे जरी हा सामान्य नियम। तत्रापि हा देहात्मसंगम। अपवाद परम अनिवार्य ।।६।। स्वभावें हे परस्पर भिन्न। परि दोघांचा स्नेह विलक्षण। एका न गमे दुजियावीण। वेगळे न क्षण राहती ।।७।। तरी हा देह आहे नश्वर। आत्मा निर्विकार अक्षर। दोघांचें प्रेम अपरंपार। तेणेंच संसारपरिभ्रम ।।८।। आत्मा तेंच शक्ती महत्। तियेहूनि सूक्ष्म अव्याकृत। तेंच आकाश प्रकृति अव्यक्त। मायाही वदत तियेसचि ।।९।। या सर्वांहूनि पुरुष सूक्ष्म। तेथेंच इंद्रियादिकांसी उपरम। तीच अंतिम गति परम। शुद्धब्रह्म तें हेंच ।।१०।। ऐसा आत्मा हा संसारी। भासे मायाकर्मानुसारी। असूनि स्वयें निर्विकारी। स्फटिकापरी निर्लेप ।।११।। स्फटिक लाल काळा पिवळा। जैसा रंग तैसी कळा। परि तो सर्वां रंगां निराळा। विकारां वेगळा निर्मळ ।।१२।। माळावरील जैसें मृगजळ। शुक्तिकाधिष्ठित रौप्य झळाळ। पाहतां दोरीचें वेंटाळ। नसता व्याळ आभासे ।।१३।। दोरीवरी सर्पारोपण। वस्तुगत्या अप्रमाण। तैसेंच ''मी देह'' हा अभिमान। मिथ्या बंधन मुक्तासी ।।१४।। देहेंद्रिय मनःप्राण। आत्मा यांहूनही विलक्षण। स्वयंज्योति शुद्ध चैतन्य। विकारविहीन निराकृती ।।१५।। देह बुद्धी मन प्राण। या सर्वांचा जंव अभिमान। तंव तें कर्तृत्व भोक्तृत्व प्रमाण। सुखदुःखभान अनिवार्य ।।१६।। वटकणिका सूक्ष्म किती। गर्भीं सांठवी वटवृक्षशक्ती। अगणित कणिका वृक्षांपोटी। वृक्षकोटी तयांत ।।१७।। ऐसे कणिकेगणित वृक्ष। आप्रलयान्त देतील साक्ष। ऐसेंच विश्व प्रत्यक्ष। अवलोका लक्ष देऊनि ।।१८।। शाश्वतता निर्भयता मुक्तता। स्वतंत्रता परमात्मप्राप्तता। हीच जीवाची साफल्यता। इतिकर्तव्यता जन्माची ।।१९।। मोक्ष नाहीं ज्ञानाविना। विना विरक्त न पवे ज्ञाना। संसार जों वाटेना अनित्य मना। स्फुरेना कल्पना विरक्तीची ।।२०।। त्या अनित्यत्वाच्या वाटे। विश्वाभासें दृष्टी फाटे। तेणें पांथस्थ मध्यें चाकाटे। जावें कोठें आकळेना ।।२१।। ऐसा हा विश्वाभास। चिन्मात्रीं मिथ्या मायाविलास। प्रपंचजात स्वप्नविन्यास। तदर्थ प्रयास कां व्यर्थ ।।२२।। स्वप्नांतूनि जागृतींत। येतांच स्वप्न होय अस्तंगत। म्हणूनि जो निजस्वरूपीं स्थित। तया प्रपंचार्थ स्मरेना ।।२३।। विना आत्मैक्यत्व विज्ञान। विना आत्मयाथात्म्य-प्रकाशन। तुटावया शोकमोहादि बंधन। जागृती आन असेना ।।२४।। जरी सर्वांहूनि श्रेष्ठ ज्ञान। बाबा उपदेशीत रात्रंदिन। तरीही भक्तिमार्गाचें अवलंबन। सर्वसाधारण निवेदीत ।।२५।। वदत ज्ञानमार्गाचें महिमान। मार्ग तो रामफळासमान। भक्तिमार्ग सीताफळ-सेवन। स्वल्प साधन रसमधुर ।।२६।। भक्ति ही सोज्ज्वळ सीताफळ। ज्ञान हें परिपक्व रामफळ। एकाहूनि एक रसाळ। मधुर परिमळ तैसाच ।।२७।। रामफळ गर्भींचा गीर। फळ काढूनि पिकवितां उगीर। वृक्षींच पिके तों धरी जो धीर। तयासीच मधुर लागे तो ।।२८।। रामफळाची गोडी सरस। देठेंसीं परिपक्व होई जों तरूस। उगीर लागे पडतां भुईस। अति मिठास वर पिकतां ।।२९।। वरचेवर जो पिकवूं जाणे। तेणेंच त्याचा आस्वाद घेणें।

सीताफळ हे सायास नेणे। अल्पगुणें बहुमोल।।३०।। रामफळासी पतनभय। ज्ञानियाही नाहीं निर्भय। झाला पाहिजे सिद्धिविजय। लव हयगय कामा न ये।।३१।। म्हणूनि साई दयाघन। बहुधा निज शिष्यांलागून। भक्ती आणि नामस्मरण। याचेंच विवरण करीत।।३२।। ज्ञानाहूनही श्रेष्ठ ध्यान। अर्जुनालागीं कथी भगवान। तुटावया भक्तभवबंधन। साईही साधन हें वदे।।३३।। असो येविषयींची कथा। पूर्वाध्यायीं वर्णितां वर्णितां। अपूर्ण राहिली ती मी आतां। कथितों श्रोतां परिसिजे।।३४।। वयोवृद्ध शक्तिक्षीण। म्हातारी एक मांडी निर्वाण। मंत्र मागावया साईपासून। प्रायोपवेशन आरंभी।।३५।। पाहोनियां तियेची स्थिती। माधवरावांस पडली भीती। करूं गेले बाबांशीं मध्यस्थी। कथानुसंगती पूर्वील।।३६।। साईसंकल्प-विद्योती। उजळली ही चारित्रज्योती। मार्गदर्शक होवो तद्दीप्ति। मार्ग भावार्थी उमगोत।।३७।। बाबांचिया आज्ञेनुसार। माधवरावांनीं मजबरोबर। आरंभिली कथा सुंदर। तीच पुढारां चालवूं।।३८।। म्हणती पाहूनि म्हातारीचा निग्रह। बाबांनीं तीस दिधला अनुग्रह। फिरविला तियेचे मनाचा ग्रह। कथासंग्रह अभिनव।।३९।। पुढें बाबांनीं प्रेमळपणें। हांक मारिली तिजकारणें। ''आई तूं कां गे घेतलें धरणें। कां तुज मरणें आठवलें।।४०।।'' कोणीही असो प्रौढ बाई। तिजला हांक मारीत 'आई'। पुरुषांस 'काका' 'बापू' 'भाई'। गोड नवलाई हांकेची।।४१।। अंतरंग जैसें प्रेमळ। बोलही तैसेच मंजुळ। रंजल्यागांजल्यांचे कनवाळ। दीनदयाळ श्रीसाई।।४२।। असो तिजला हांक मारिली। आपुले सन्मुख बैसविली। निजगुरुत्वाची गुप्त किल्ली। प्रेमें दिधली निजहातें।।४३।। कराया भवसंतापशमन। भक्तचकोरतृषापनयन। वर्षलें जे बाबा चिद्घन। स्वानंदजीवन तें सेवा।।४४।। म्हणती ''आई, खरेंच सांगें। हाल जीवाचे करिसी कां गे। फकीर मी केवळ तुकडे मागें। पाहीं अनुरागें मजकडे।।४५।। खरेंच मी लेक तूं आई। आतां मजकडे लक्ष देईं। सांगतों तुज एक नवलाई। परम सुखदाई होईल।।४६।। होता पहा माझा गुरु। मोठा अवलिया कृपासागरू। थकलों तयाची सेवा करकरूं। कानमंतरू देईना।।४७।। माझ्याही मनीं प्रबळ आस। कधीं न सोडावी तयाची कांस। तया मुखेंच घ्यावें मंत्रास। दीर्घ सायास करूनि।।४८।। आरंभीं तयानें मज मुंडिलें। पैसे मज दोनचि याचिले। ते मी तात्काळ देऊनि टाकिले। बहु मीं प्रार्थिलें मंत्राक्षर।।४९।। माझा गुरु पूर्णकाम। दोन पैशांचें काय काम। कैसें म्हणावें त्या निष्काम। शिष्यांसी दाम मागे जो।।५०।। ऐसी न शंका येवो मना। व्यावहारिक पैशाची न त्या कामना। ही तों नाहीं तयाची कल्पना। कर्तव्य कांचना काय त्या।।५१।। निष्ठा आणि सबुरी दोन। हेच ते पैसे, नव्हते आन। म्यां ते तेव्हांच टाकिले देऊन। तेणें मज प्रसन्न गुरुमाय।।५२।। धैर्य तीच गे बाई सबुरी। सांडूं नको तिजला दूरी। पडतां केव्हांही जडभारी। हीच परपारीं नेईल।।५३।। पुरुषांचें पौरुष ती ही सबुरी। पाप ताप दैन्यता निवारी। युक्तिप्रयुक्तीं आपत्ती वारी। बाजूस सारी भय भीती।।५४।। सबुरीवरी यशाचा वांटा। विपत्ती पळवी बारा वाटा। येथ अविचाराचा कांटा। नाहीं ठावुका कोणाही।।५५।। सबुरी सद्गुणांची खाणी। सद्विचाररायाची हे राणी। निष्ठा आणि ही सख्या बहिणी। जीव प्राण दोघींसी।।५६।। सबुरीवीण मनुष्यप्राणी। स्थिती तयाची दैन्यवाणी। पंडित असो कां मोठा सद्गुणी। व्यर्थ जिणें हिजवीण।।५७।। गरु जरी महा प्रबळ। अपेक्षी शिष्यप्रज्ञाच केवळ। गुरुपदीं निष्ठा सबळ। धैर्यबळ सबुरी।।५८।। जैसा दगड आणि मणी। उजळती दोन्ही घासितां सहाणीं। परि दगड राहे दगडपणीं। मणी तो मणी तेजाळ।।५९।। एकचि संस्कार दोघां उजळणी। दगडा चढेल काय मण्याचें पाणी। घडेल मण्याची सतेज हिरकणी। दगड निजगुणीं तुळतुळीत।।६०।। बारा वर्षे पायीं वसवटा। केला गुरुनें लहानाचा मोठा। अन्नवस्त्रासी नव्हता तोटा। प्रेम पोटांत अनिवार।।६१।। भक्तिप्रेमाचा केवळ पुतळा। जयास शिष्याचा खरा जिव्हाळा। माझ्या गुरुसम गुरु विरळा। सुखसोहळा न वर्णवे।।६२।। काय त्या प्रेमाचें करावें वर्णन। मुख पाहतां ध्यानस्थ नयन। आम्ही उभयतां आनंदघन। अन्यावलोकन नेणें मी।।६३।। प्रेमें गुरुमुखावलोकन। करावें म्यां रात्रंदिन। नाहीं मज

भूक ना तहान। गुरुवीण मन अस्वस्थ।।६४।। तयावीण नाहीं ध्यान। तयावीण न लक्ष्य आन। तोच एक नित्य अनुसंधान। नवलविंदान गुरुचें।।६५।। हीच माझ्या गुरुची अपेक्षा। कांहीं न इच्छी तो यापेक्षां। केली न माझी केव्हांही उपेक्षा। संकटीं रक्षा सदैव।।६६।। कधीं मज वास पायांपाशीं। कधीं समुद्र-परपारासी। परि न अंतरलों संगमसुखासी। कृपादृष्टीसीं सांभाळी।।६७।। कांसवी जैसी आपुले पोरां। घालिते निजदृष्टीचा चारा। तैसीच माझे गुरुची तऱ्हा। दृष्टीनें लेंकरा सांभाळी।।६८।। आई या मशिदींत बैसून। सांगतों तें तूं मानीं प्रमाण। गुरुनें न फुंकले माझेच कान। तुझे मी कैसेन फुंकरूं।।६९।। कांसवीची प्रेमदृष्टी। तेणेंच पोरांसी सुखसंतुष्टी। आई उगीच किमर्थ कष्टी। उपदेशगोष्टी नेणें मी।।७०।। कांसवी नदीचे एके तटीं। पोरें पैल वाळवंटीं। पालन पोषण दृष्टदृष्टी। व्यर्थ खटपटी मंत्राच्या।।७१।। तरी तूं जा अन्न खाईं। नको हा घालूं जीव अपायीं। एक मजकडे लक्ष देईं। परमार्थ येईल हातास।।७२।। तूं मजकडे अनन्य पाहीं। पाहीन तुजकडे तैसाच मीही। माझ्या गुरुनें अन्य कांहीं। शिकविलें नाहींच मजलागीं।।७३।। नलगे साधनसंपन्नता। नलगे षट्शास्त्रचातुर्यता। एक विश्वास असावा पुरता। कर्ता हर्ता गुरु ऐसा।।७४।। म्हणूनि गुरुची थोर महती। गुरु हरिहरब्रह्ममूर्ती। जो कोण जाणे तयाची गती। तो एक त्रिजगतीं धन्य गा।।७५।।'' येणेंपरी ती म्हातारी बोधितां। ठसली तियेचे मना ती कथा। ठेवूनि महाराजांचें पायीं माथा। व्रतनिवृत्तता आदरिली।।७६।। ऐकूनि ही समूळ कथा। जाणूनि तिची समर्पकता। सानंद विस्मय माझिया चित्ता। कथासार्थकता अवलोकितां।।७७।। पाहोनि बाबांची ही लीला। परमानंदें कंठ दाटला। प्रेमोद्रेकें गहिंवर आला। अंतरीं ठसला सद्बोध।।७८।। पाहोनि सद्गद कंठ झाला। माधवराव वदले मजला। कां हो अण्णासाहेब गहिंवरलां। स्वस्थ बैसलां हें काय।।७९।। ऐशा बाबांच्या अगणित कथा। किती म्हणूनि सांगूं आतां। ऐसें माधवराव बोलत असतां। घंटा वाजतां ऐकिली।।८०।। रोज दुपारा जेवणाआधीं। भक्त जाऊनियां बैसती मशिदीं। करिती गंधाक्षत-अर्घ्य-पाद्यादी। पूजा सविधी बाबांची।।८१।। तद्नंतर ती पंचारती। बापूसाहेब जोग करिती। भक्तिप्रेमें ओंवाळिती। आरत्या म्हणती भक्तजन।।८२।। त्या आरतीची निदर्शक भली। घंटा घणघण वाजूं लागली। आम्हीं मशिदींची वाट धरिली। मनीषा फिटली मनाची।।८३।। माध्यान्हसमयींची ही आरती। नरनारी मिळूनियां करिती। स्त्रिया मशिदींत वरती। पुरुष खालती मंडपीं।।८४।। मंगल-वाद्यांचिया गजरीं। तासाचिया झणत्कारीं। आरत्या म्हणती उच्चस्वरीं। हर्षनिर्भरीं तेधवां।।८५।। पातलों आम्ही मंडपद्वारीं। आरती चालली घनगजरीं। पुरुष मंडळीं वेष्टिली पायरी। रीघ ना वरी जावया।।८६।। माझ्या मनीं असावें खालीं। जोंवरी आरती नाहीं संपली। संपतांच मग बाबांजवळी। जावें मंडळीसमवेत।।८७।। म्हणोनि मीं जो मनीं आणिलें। माधवराव पायरी चढले। कराग्रीं धरूनि मजही ओढिलें। जवळी नेलें बाबांचे।।८८।। बाबा निजस्थानीं स्थित। स्वस्थमनें चिलीम पीत। समोर जोग पंचारती ओंवाळीत। घंटा वाजवीत वामकरें।।८९।। ऐशा त्या आरतीचे रंगीं। माधवराव बाबांचे दक्षिणभागीं। स्वयें बैसती मजही बैसविती। सन्मुख स्थिती बाबांचे।।९०।। मग शांतमूर्ती संतमणी। बाबा बोलती मंजुळ वाणी। दक्षिणा काय दिधली आणीं। शामरावांनीं मजप्रती।।९१।। बाबा हे शामराव येथेंच असती। दक्षिणेऐवजीं नमस्कार देती। हेच पंधरा रुपये म्हणती। बाबांप्रती अर्पावे।।९२।। बरें असो केल्या का वार्ता। कांहीं बोललां कां उभयतां। काय गोष्टी केल्या आतां। सांग समस्ता मजप्रती।।९३।। असो नमस्काराची कथा। केल्यास काय तयासी वार्ता। काय कैशा त्या समग्रता। परिसवीं आतां मजप्रती।।९४।। गोष्ट सांगावी ही उत्कंठा। आरतीचा तो गजर मोठा। परमानंद माईना पोटा। प्रवाहे ओठांतूनि तो।।९५।। बाबा जे तक्यास ओठंगले। गोष्ट ऐकावया पुढें झालें। मींही पुढें वदन केलें। करूं आरंभिलें कथन तें।।९६।। बाबा तेथें झाल्या ज्या वार्ता। सर्वचि वाटल्या गोड चित्ता। त्यांतचि एक ती म्हातारीची कथा। अति नवलता तियेची।।९७।। शामरावें

ती गोष्ट कथितां। दिसोनि आली आपुली अकळता। जणूं त्या कथेच्या मिषें मजवरता। केलात निश्चितता अनुग्रह।।९८।। तंव बाबा अति उत्सुकता। म्हणती सांग मज ती समग्र कथा। काय पाहूं कैसी नवलता। अनुग्रहता ती कैसी।।९९।। गोष्ट होती ताजी ऐकिली। शिवाय मनांत फारचि ठसलेली। बाबांस अस्खलित निवेदन केली। प्रसन्न दिसली चित्तवृत्ती।।१००।। ऐसें कथिलें सकल वृत्त। बाबाही ऐकत देऊनि चित्त। सर्वेचि मग मातें वदत। जीवीं धरीत जावें हें।।१०१।। आणिक पुसती अति उल्हासता। ''किती ही गोड ऐकिली कथा। बाणली कां ते तव चित्ता। खरीच सार्थकता मानली कां।।१०२।।'' बाबा या कथाश्रवणांतीं। लाधलों मी निजविश्रांती। फिटली माझे मनाची आर्ती। मार्ग निश्चितीं मज कळला।।१०३।। मग बाबा वदती तयावरी। ''कळाच आमुची आहे न्यारी। ही एकच गोष्ट जीवीं धरीं। फार उपकारी होईल।।१०४।। आत्मयाचें सम्यग्विज्ञान। सम्यग्विज्ञानाकारण ध्यान। तें ध्यानचि आत्मानुष्ठान। तेणेंच समाधान वृत्तीचें।।१०५।। होऊनि सर्वेषणाविनिर्मुक्त। ध्याना आणावा सर्वभूतस्थ। ध्यान होईल व्यवस्थित। प्राप्तव्य प्राप्त होईल।।१०६।। केवळ जें मूर्त ज्ञान। चैतन्य अथवा आनंदघन। तेंचि माझें स्वरूप जाण। तें नित्य ध्यान करीं गा।।१०७।। जरी न आतुडे ऐसें ध्यान। करीं सगुणरूपानुसंधान। मनीं नखशिखान्त मी सगुण। रात्रंदिन आणावा।।१०८।। ऐसें करितां माझे ध्यान। वृत्ती होईल एकतान। ध्याता-ध्यान-ध्येयाचें भान। नष्ट होऊन जाईल।।१०९।। एवं ही त्रिपुटी विलया जातां। ध्याता पावे चैतन्यघनता। हीच कीं ध्यानाची इतिकर्तव्यता। ब्रह्मसमरसता पावसी।।११०।। कांसवी नदीचे ऐल कांठीं। तिचीं पिल्लें पैल तटीं। ना दूध ना ऊब केवळ दृष्टी। देई पुष्टी बाळकां।।१११।। पिलियां सदा आईचें ध्यान। नलगे कांहींच करणें आन। नलगे दूग्ध ना चारा ना अन्न। मातानिरीक्षण पोषण त्यां।।११२।। हें जें निरीक्षण कूर्मदृष्टी। ही तों प्रत्यक्ष अमृतवृष्टी। पिलियां लाधे स्वानंदपुष्टी। ऐक्यसृष्टी गुरुशिष्यां।।११३।। होतां हा साईमुखें उच्चार। थांबला आरतीचा गजर। ''श्रीसच्चिदानंद सद्‌गुरुजयजयकार''। केला पुकार सकळांनीं।।११४।। सरला नीरांजनोपचार। सरली आरती सविस्तर। जोग मग अर्पितां खडीसाखर। बाबा करपंजर पसरिती।।११५।। तयांत नित्यक्रमानुसार। खडीसाखर ती ओंजळभर। घालिती जोग प्रेमपुरःसर। नमस्कारपूर्वक।।११६।। ती सबंध शर्करा माझे हातीं। बाबा रिचविती आणि वदती। या साखरेवाणी होईल स्थिती। ठेवितां चित्तीं ही गोष्ट।।११७।। जैसी खडीसाखर ही गोड। तैसेंच पुरेल मनींचें कोड। होईल तुझें कल्याण चोखड। पुरेल होड अंतरींची।।११८।। मग मी बाबांस अभिवंदोन। मागितलें हेंचि कृपादान। हेंचि पुरे मज आशीर्वचन। सांभाळून घ्या मज।।११९।। बाबा वदती ''कथा श्रवण। करा मनन आणि निदिध्यासन। होईल स्मरण आणि ध्यान। आनंदघन प्रकटेल।।१२०।। एणेंपरी जें परिसिलें कानीं। तें जरी तूं धरिसील मनीं। उघडेल निजकल्याणाची खनी। होईल धुणी पापाची।।१२१।। वाऱ्याचा चालतां सोसाटा। समुद्रावरी उसळती लाटा। असंख्य बुद्‌बुद फेणाचा सांठा। आदळती कांठा येऊनि।।१२२।। लाटा बुडबुडे फेण भंवरे। एका पाण्याचे प्रकार सारे। हे सकळ दृग्भ्रमाचे पसारे। शांत वारे होती तों।।१२३।। हे काय प्रकार म्हणावे झाले। किंवा म्हणावे कां नाश पावले। जाणोनि मायेचें सर्व केलें। झालें गेलें सरिसेंच।।१२४।। तैसीच सृष्टीची घडामोड। विवेकियां न तयाचें कोड। ते नाशिवंतीं न धरिती होड। साधिती जोड नित्याची।।१२५।। महत्त्वें ज्ञानापरीस ध्यान। तदर्थ लागे यथार्थ ज्ञान। होतां न वस्तूचें साद्यंत आकलन। यथार्थ ध्यान आतुडेना।।१२६।। सम्यग्विज्ञान मूळ ध्यान। या नांव प्रत्यगात्मानुष्ठान। परि जो विक्रियारहित जाण। आणवे ध्याना कैसेनी।।१२७।। प्रत्यगात्मा तोचि ईश्वरू। आणि जो ईश्वरू तोचि गुरु। तिहींत भेद नाहीं अणुमात्रु। नागवे करूं जाई तो।।१२८।। होतां निदिध्यास परिपक्वता। ध्यान ध्याता विरोनि जातां। निवात दीपवत् चित्ता। शांतता ते 'समाधी'।।१२९।। होऊनि सर्वेषणाविनिर्मुक्त। जाणूनि आहे तो सर्वभूतस्थ। होतां अद्वितीयत्वें अभय प्राप्त। मग तो येत ध्यानातें।।१३०।।

मग अविद्याकृत कर्मबंध। तुटती तटातट तयाचे संबंध। सुटती विधिनिषेध-निर्बंध। भोगी आनंद मुक्तीचा।।१३१।। आधीं आत्मा आहे कीं नाहीं। अद्वैत कीं निराळा ठायीं ठायीं। कर्ता कीं अकर्ता पाहीं। साही शास्त्रें धुंडावीं।।१३२।। आत्मैकविज्ञान हेंचि। पराकाष्ठा असे ज्ञानाची। मोक्ष आणि परमानंदाची। उत्पत्ती साची तेथूनि।।१३३।। अंधास हत्तीचे वर्णनाकरितां। आणिला बृहस्पतीसमान वक्ता। वक्तृत्वें स्वरूप येईना चित्ता। वाचातीता न वर्णवे।।१३४।। वक्त्याचें वक्त्र श्रोत्यांचे श्रोत्र। आणितील काय गेलेले नेत्र। हस्तिस्वरूपावलोकनपात्र। केवळ नेत्रचि सत्यत्वें।।१३५।। नेत्र नसतां कैसा हस्ती। येईल अंधाचिये प्रतीतीं। तैसेच दिव्य नेत्र जैं गुरु देती। ज्ञानसंवित्ती तेधवां।।१३६।। साईस्वरूप यथार्थ ज्ञान। स्वयें जो परिपूर्ण विज्ञानघन। हेंच तयांचें ध्यान अनुष्ठान। हेंच दर्शन तयांचें।।१३७।। अविद्या-काम-कर्मबंधन। यांचें व्हावया अशेष मोचन। नाहीं नाहीं अन्य साधन। गांठ ही बांधून ठेवा कीं।।१३८।। साई नाहीं तुमचा वा आमुचा। तो तों सर्वभूतस्थ साचा। सूर्य जैसा सकल जगाचा। हा सकळांचा तैसाच।।१३९।। आतां परिसा तयांचे बोल। सर्वसाधारण आणि अनमोल। स्मरणीं ठेवितां वेळोवेळ। स्वार्थ सफळ सर्वदा।।१४०।। ''नसल्या लागाबांधा कांहीं। कोणीही कोठेंही जातचि नाहीं। नरास काय पशुपक्ष्यांही। न करीं कुणाही हडहड।।१४१।। आल्यागेल्याचा आदर करीं। तृषितां जल भुकेल्या भाकरी। उघड्यास वस्त्र बसाया ओसरी। देतां श्रीहरी तुष्टेल।।१४२।। कुणाला व्हावा असेल पैसा। तुझिया चित्तीं द्यावा कैसा। देऊं नको, परि वसवसा। श्वानाऐसा वर्तूं नको।।१४३।। कोणीही बोल बोलो शंभर। स्वयें नेदीं कटु उत्तर। धरितां सहिष्णुता निरंतर। सुख अपार लाधेल।।१४४।। दुनिया झालिया इकडची तिकडे। आपण व्हावें न मागें पुढें। ठायींच निश्चल राहूनि रोकडें। कौतुक तेवढें पहावें।।१४५।। तुम्हांआम्हांमधील भिंत। पाडूनि टाका पहा समस्त। मग जाण्यायेण्यास मार्ग प्रशस्त। अति निर्धास्त होईल।।१४६।। मीतूंपणाची भेदवृत्ती। हेच ते गुरुशिष्यांतर्गत भिंती। ते न पाडितां निश्चितीं। अभेदस्थिती दुर्गम।।१४७।। ''अल्ला-मालिक अल्ला-मालिक''। वाली न त्यावीण कोणी आणिक। करणी तयाची अलोकिक। अमोलिक अकळ ती।।१४८।। तो जें करील तेंच होईल। मार्ग तयाचा तोच दावील। क्षण न लागतां वेळ येईल। मुराद पुरेल मनींची।।१४९।। ऋणानुबंधाचिया गांठी। भाग्यें आम्हां तुम्हां भेटी। धरूं परस्पर प्रेम पोटीं। सुखसंतुष्टी अनुभवूं।।१५०।। कोण येथें अमर आहे। कृतार्थ तो जो परमार्थ लाहे। नातरी श्वासोच्छ्वास वाहे। तोंवरी राहे जीवमात्र।।१५१।।'' कानीं पडतां हें कृपावचन। सुखावलें माझें आतुर मन। तृषार्त मी लाधलों जीवन। आनंदसंपन्न जाहलों।।१५२।। असेल गांठीं प्रज्ञा अतुळ। तैसीच श्रद्धा मोठी अढळ। परि जोडाया साईसम गुरुबळ। दैवचि सबळ आवश्यक।।१५३।। पाहूं जातां यांतील सार। भगवंत बोलिले हाचि निर्धार। ''ये यथा मां'' हेचि उद्‌गार। अखिल भार कर्मावरी।।१५४।। यथाकर्म यथाश्रुत। जैसा अभ्यास तैसें हित। हेंचि या अध्यायांतील इंगित। हेंच बोधामृत येथींचें।।१५५।। ''अनन्याश्चिंतयंतो माम्''। हेंच भगवद्‌गीतावर्म। ऐशा नित्ययुक्तांचा योगक्षेम। चालवी प्रकाम गोविंद।।१५६।। हा गोड उपदेश ऐकून। उभें राही स्मृतीचें वचन। ''देवान्भावयतानेन''। मग ते तुजलागून कळवळती।।१५७।। तुम्ही जोर काढूं लागा। दुधाची काळजी सर्वस्वी त्यागा। वाटी घेऊनि उभाच मी मागां। पृष्ठभागां आहें कीं।।१५८।। म्हणाल जोर म्यां काढावे। दुधाचे प्याले तुम्हीं रिचवावे। हें तों आपणा नाहीं ठावें। दक्ष असावें कार्यार्थी।।१५९।। हे बाबांची प्रतिज्ञावाणी। प्रमाण मानूनि वर्ततील जे कोणी। इहपरत्र सुखाची खाणी। गांठिली तयांनीं जाणावें।।१६०।। आतां आणिक विनवितों श्रोतां। क्षणैक सुस्थिर करावें चित्ता। परिसा एक स्वानुभवकथा। निश्चयपोषकता साईंची।।१६१।। सद्वृत्तीचें करितां नियमन। महाराज देती कैसें उत्तेजन। परिसा ओंठ हालविल्यावांचून। अनुग्रहदान साईंचें।।१६२।। भक्तें अनन्य शरण व्हावें। कौतुक भक्तीचें अवलोकावें। मग साईंच्या कळेचे नवलावे। अनुभवावे नित्य नवे।।१६३।। असो प्रातःकाळींचे प्रहरीं।

सुषुप्तींतूनि येतां जागरीं। सद्वृत्तीची उठतां लहरी। तीच निर्धारीं वाढवावी।।१६४।। त्याच वृत्तीचा परिपोष। होतां होईल अति संतोष। बुद्धीही पावेल विकास। होईल मनास प्रसन्नता।।१६५।। ही एक आहे संतउक्ती। वाटलें तियेची घेऊं प्रचीती। अनुभवें घडली मनास शांती। नवल चित्तीं वाटलें।।१६६।। शिरडीसारखें पवित्र स्थान। गुरुवारासम मंगल दिन। रामनामाचें अखंड आवर्तन। करावें मन जाहलें।।१६७।। बुधवारीं रात्रीं शय्येवरी। देह निद्रावश होई तोंवरी। मन रामस्मरणाभीतरीं। घालून अंतरीं राखिलें।।१६८।। प्रातःकाळीं जाग येतां। रामनाम स्मरलें चित्ता। मग ते ऐसी वृत्ती उठतां। जिव्हेची सार्थकता जाहली।।१६९।। निश्चयें केली मनाची धारणा। सारोनियां शौचमुखमार्जना। निघालों साई-प्रातर्दर्शना। प्राप्त सुमना घेऊनि।।१७०।। सोडूनि दीक्षितांचें घर। पडतां बुट्टींच्या वाड्याबाहेर। पद एक मधुर औरंगाबादकर। म्हणतां सुंदर ऐकिलें।।१७१।। पदाची त्या समयोचितता। ओवीरूपें कथूं जातां। जाईल मूळाची स्वारस्यता। होईल विरसता श्रोतियां।।१७२।। म्हणवूनि तें पदचि समूळ। अक्षरें अक्षर गातों मी सकळ। तेणेंच आनंदित होतील प्रेमळ। उपदेश निर्मळ मूळपदीं।।१७३।।

।। पद।।

''गुरुकृपांजन पायो मेरे भाई। रामबिना कछु मानत नाहीं।। धृ०।।
अंदर रामा बाहर रामा। सपने में देखत सीतारामा।।१।।
जागत रामा सोवत रामा। जहां देखे वहां पूरनकामा।।२।।
एका जनार्दनीं अनुभव नीका। जहां देखे वहां राम सरीखा।।३।। गुरु०।।''

आधींच मनानें केलें निश्चित। नियमावें रामनामीं चित्त। निश्चया जों प्रारंभ होत। पद हें देत दृढता तया।।१७४।। तेणें मनासी झालें बोधन। या मन्निश्चयांकुरालागून। साई समर्थ करुणाघन। पदांबुसेचन करिती कां।।१७५।। घेऊनियां हातीं तंबुरी। साईंसन्मुख अंगणाभीतरीं। औरंगाबादकर उंच स्वरीं। म्हणतां ही लकेरी परिसिली।।१७६।। औरंगाबादकर बाबांचा भक्त। मजसम बाबांचे पायीं अनुरक्त। असतां अनेक पदें मुखोद्गत। हेंच कां स्फुरत ते वेळीं।।१७७।। माझें मनोगत कोणा न ठावें। हेंचि पद कां तैं गाइलें जावें। जैसें बाबांनी सूत्र हालवावें। स्फुरण व्हावें तैसेंच।।१७८।। आम्ही सकळ केवळ बाहुलीं। सूत्रधार साई माउली। स्वयें न बोलतां उपासना भली। हातीं दिधली अचूक।।१७९।। अंतरींची माझी वृत्ती। प्रतिबिंबली जणूं बाबांचे चित्तीं। एणें मार्गें प्रत्यक्ष प्रतीती। वाटे निश्चिती दाखविली।।१८०।। केवढी या नामाची महती। वर्णिलीसे संतमहंतीं। काय म्यां पामरें ती वानावी किती। स्वरूपप्राप्ती येणेनी।।१८१।। हीं दो अक्षरें उलटी स्मरला। तो कोळी वाटपाड्याही उद्धरला। वाल्याचा वाल्मीक होऊनि गेला। वाक्सिद्धी पावला नवलाची।।१८२।। ''मरा मरा'' उलटें म्हणतां। राम प्रकटला जिव्हेवरता। जन्माआधींच अवतारचरिता। जाहला लिहिता रामाचे।।१८३।। रामनामें पतितपावन। रामनामें लाभ गहन। रामनामें अभेद भजन। ब्रह्मसंपन्न या नामें।।१८४।। रामानामाच्या आवर्तनें। उठेल जन्ममरणांचें धरणें। एका रामनामाचिया स्मरणें। कोटिगुणें हे लाभ।।१८५।। जेथें रामनामाचें गर्जन। फिरे तेथें विष्णूचें सुदर्शन। करी कोटी विघ्नांचें निर्दळण। दीनसंरक्षण नाम हें।।१८६।। साईंस उपदेशा न स्थळ। नलगे समय काळवेळ। बसतां उठतां चालतां निखळ। सहजचि सकळ उपदेश।।१८७।। येविषयींची गोड कथा। सादर श्रवण कीजे श्रोतां। प्रत्यया येईल साईंची सदयता। तैसीच व्यापकता तयांची।।१८८।। एकदां एक भक्त श्रेष्ठ। कोणाची कोणी बोलतां गोष्ट। स्वयें होऊनि कुतर्काकृष्ट। निंदासन्निष्ट जाहले।।१८९।। गुण राहिले एकीकडा। निंदा प्रवाहे मुखीं दुथडा। गोष्टीचा होवोनियां चुथडा। आला कीं उभडा पैशुन्या।।१९०।। असल्या कांहीं तरी कारण।

असल्या कोणाचें गर्ह्य आचरण। करावें सन्मुख तयाचें प्रबोधन। कींव जाणून तयाची।।१९१।। निंदा कधींही करूं नये। हें तों प्रत्येक जाणे स्वयें। परि न वृत्ति जैं दाबिली जाये। ती ना समाये पोटांत।।१९२।। तेथूनि मग येई कंठीं। कंठांतूनि जिव्हेचे तटीं। तेथूनि हळू हळू  ओठीं। सुखसंतुष्टीं प्रवाहे।।१९३।। नाहीं दुजा निंदकापरी। त्रिभुवनांतही कोणी उपकारी। निंदा जयाची तयाचें करी। परोपरी कल्याण।।१९४।। मळ काढिती कोणी रिठ्यानें। कोणी साबणादिकीं साधनें। कोणी शुद्ध निर्मल जीवनें। निंदक जिव्हेनें काढिती।।१९५।। स्वीय मानसिक अधोगती। परोपकारार्थ जे साहती। अवर्णनीय ती महदुपकृती। निंदक निश्चिती अतिवंद्य।।१९६।। पावलोपावलीं सावध करिती। निंदामिषें दोष कळविती। भावी परांचे अनर्थ टाळविती। उपकार हे किती वानूं मी।।१९७।। बहुतांपरी साधुसंतीं। वर्णिलीसे जयांची महती। तया निंदकवृन्दाप्रती। करितों मी प्रणति साष्टांग।।१९८।। आली श्रोतियां अत्यंत चिळसी। निंदकही निघाले बहिर्दिशीं। मंडळी चालली मशिदीसी। दर्शनासी बाबांच्या।।१९९।। बाबा पूर्ण अंतर्ज्ञानी। देती वेळींच भक्तांस शिकवणी। पुढें कैसा प्रकार तयांनीं। आणिला घडवूनि तें परिसा।।२००।। मंडळीसह जातां लेंडियेसी। बाबा पुसती तया भक्ताविसीं। मंडळी म्हणे ओढियापासीं। बहिर्दिशेसी गेलेती।।२०१।। कार्यक्रम आटोपल्यावरी। लेंडीवरूनि परतली स्वारी। ओढियावरूनि भक्तही माघारीं। फिरले घरीं जावया।।२०२।। भेटी होतां परस्परां। घडला जो वृत्तांत तये अवसरां। विनवीं श्रोतयां जोडूनि करा। तो अवधारा सादर।।२०३।। तेथेंच एका कुंपणाशेजारी। यथेष्ट विष्ठामिष्टान्नावरी। एक ग्रामसूकरी मिटक्या मारी। बाबा निजकरीं दाविती त्यां।।२०४।। ''पहा त्या जिभेला काय गोडी। जनालोकांची विष्ठा चिवडी। बंधु-स्वजनावर चडफडी। यथेष्ट फेडी निज हौस।।२०५।। बहुत सुकृताचिये जोडी। आला नरजन्म ऐसा जो दवडी। तया आत्मघ्ना ही शिरडी। सुखपरवडी काय दे।।२०६।।'' ऐसें बोलत बाबा गेले। भक्त अंतरीं बहुत खोंचले। प्रातर्वृत्त सर्व आठवलें। बोल ते टोंचले बहु वर्मीं।।२०७।। असो बाबा तों परोपरी। भक्तां बोधिती प्रसंगानुसारीं। यांतील सार सांठविल्या अंतरीं। काय हो दूरी परमार्थ।।२०८।। ''असेल जरी माझा हरी। तरी मज देईल खाटल्यावरी।'' म्हणीची या सत्यता खरी। परि ती अन्नआच्छादनीं।।२०९।। परि ती जो परमार्था लावील। परमार्थ सर्वस्वीं नागवील। ''जैसें जो करील तैसें भरील''। अमोल हे बोल बाबांचे।।२१०।। आणिकही बाबांचे बोल। परिसतां देतील स्वानंदा डोल। भावभक्तीची असलिया ओल। मुळें सखोल जातील।।२११।। ''जलस्थलकाष्ठप्रदेशीं। जनीं वनीं देशीं विदेशीं। संचलों मी तेजीं आकाशीं। एकदेशी मी नव्हें।।२१२।। औट हात देह परिमित। हेच मद्व्याप्ती जे मानीत। त्यांस करावया निर्भ्रांत। मूर्तिमंत मी झालों।।२१३।। निष्कामत्वें अनन्यभजन। करिती जे माझें रात्रंदिन। ते प्रत्यक्ष माझें मीपण। दुजेपणविरहित।।२१४।। गूळ राहील गोडीवेगळा। सागर लाटांपासाव निराळा। तेजा सोडोनि राहील डोळा। मजवीण भोळा भक्त तैं।।२१५।। चुकावा जन्ममरणावर्त। ऐसें जयाचे मनीं निश्चित। प्रयत्नें रहावें धर्मवंत। स्वस्थचित्त सर्वदा।।२१६।। त्यागावे तेणें बोल वर्मीं। कोणासी छेदूं नये मर्मीं। सदा निरत शुद्ध कर्मीं। चित्त स्वधर्मीं ठेवावें।।२१७।। माझिये ठायीं मन बुद्धी। समर्पा स्मरा मज निरवधि। देहाचें कांहींही होवो कधीं। भय त्रिशुद्धी त्या नाहीं।।२१८।। जो पाहे मजकडे अनन्य। वर्णी परिसे मत्कथा धन्य। न धरी भावना मदन्य। चित्त चैतन्य लाधेल।।२१९।।'' माझें नांव घ्या मज शरण या। हें तों सांगत गेले अवघियां। परि मी कोण हें जाणणिया। श्रवण मनन आज्ञापिलें।।२२०।। एकास भगवन्नाम-स्मरण। एकास भगवल्लीला-श्रवण। एकास भगवत्पाद-पूजन। आनान नियमन आनाना।।२२१।। कोणास अध्यात्म-रामायण। कोणास ज्ञानेश्वरी-पुरश्चरण। कोणास हरिवरदा-पारायण। गुरुचरित्रावलोकन कोणातें।।२२२।। कोणास बैसविती पायांजवळीं। कोणास खंडोबाचे देउळीं। कोणाच्या विष्णुसहस्त्रनामावळी। बांधिती गळीं कळकळीनें।।२२३।। कोणास

उपदेशिती रामविजय। कोणासी ध्यान नाममाहात्म्य। कोणासी छांदोग्य गीतारहस्य। विश्वासें स्वारस्य अनुभविजे।।२२४।। कोणास कांहीं कोणास कांहीं। दीक्षाप्रकारा सीमाच नाहीं। कोणा प्रत्यक्ष कोणा दृष्टान्तांहीं। उपदेश-नवलाई अपूर्व।।२२५।। भक्त अठरा पगड जाती। धांवधांवूनि दर्शना येती। जयांस मद्यावर अति प्रीति। स्वप्नींही जाती तयांचे।।२२६।। वक्षःस्थळावरी बैसती। हातींपायीं छाती दडपिती। स्पर्शाचा कानास खडा लावविती। भाक घेती तंव जाती।।२२७।। लग्नगृहीं भिंतीवरती। ज्योतिषी जैसे हरिहर काढिती। ''गुरुर्ब्रह्मादि'' मंत्र लिहिती। कोण्या भक्तार्थी स्वप्नांत।।२२८।। कोणी चोरूनि लावितां आसनें। करूं आदरितां हठयोग-साधनें। बाबांस कळे तें अंतर्ज्ञानें। अचूक बाणें खोंचिती।।२२९।। कोणा अपरिचिता हातीं धरून। निरोप देती पाठवून। स्वस्थ न बसवें कां भाकर खाऊन। सबुरी धरून रहावें।।२३०।। कोणास प्रत्यक्ष निक्षून सांगती। आमुची तों मोठी कडवी जाती। सांगून पाहूं एका दो वक्तीं। शेवटची गती बहु कठिण।।२३१।। सांगूं एकदां सांगूं दोनदां। न करी जो गुमान आमुचे शब्दा। त्या मग पोटचे पोरास सुद्धां। चिरूनि द्विधा फेकूं कीं।।२३२।। महानुभाव ते महामति। काय मी पामर वानूं चमत्कृती। कोणा दे ज्ञानप्राप्ती विरक्ती। सद्भाव-भक्ती कवणा दे।।२३३।। कोणास कांहीं व्यवहारीं प्रशस्त। वर्तनाची लावीत शिस्त। चुटका एक उदाहरणार्थ। श्रोतृवृन्दार्थ मी कथितों।।२३४।। एकदां बाबा भरदुपारीं। काय आलें नकळे अंतरीं। राधाकृष्णीच्या घराशेजारीं। आली स्वारी अवचिता।।२३५।। समवेत होते कांहीं जन। म्हणती आणा आणा रे निसण। तों एकानें तात्काळ जाऊन। शिडी तैं आणून ठेविली।।२३६।। बाबा ती लावविती घरावरी। स्वयें चढती छपरावरी। कोणा न ठावें काय अंतरीं। योजना तरी हे काय।।२३७।। वामन गोंदकराचे घरा। शिडी लावविली ते अवसरा। चढले शिडीवरूनि छपरा। स्वयें झरझरा श्रीसाई।।२३८।। तेथून राधाकृष्णीचें छपर। शेजारींच घरासीं घर। तेंही वळंघूनि गेले सत्वर। काय हा चमत्कार कळेना।।२३९।। राधाकृष्णाबाईंस मात्र। तेच संधीस मोठा प्रखर। आला होता शीतज्वर। अत्यंत अस्थिर त्या होत्या।।२४०।। दोघें दो बाजूं धरूं लागत। तेव्हांच बाबा चालूं शकत। स्वयें एवढे असतां अशक्त। कोठूनि सामर्थ्य आलें हें।।२४१।। लगेच दुसरे बाजूची वळचण। वळंघोनियां तेथील उतरण। तेथेंही लाववोनि तीच निसण। आले उतरून खालती।।२४२।। पाय लागतां धरेसी। दोन रुपये निसणवाल्यासी। दिधले बाबांनीं अति दक्षतेसीं। अविलंबितेसीं तात्काळ।।२४३।। लाविली दों ठायीं शिडी। हीच काय ती श्रमाची प्रौढी। यदर्थ बाबा भरपाई एवढी। करिती फेडी तयाची।।२४४।। जनास सहजीं जिज्ञासा। निसणवाल्यास इतुका पैसा। बाबा देती तरी हा कैसा। म्हणती हें पुसा तयांस।।२४५।। केला एकानें तेधवां धीर। बाबा देती प्रत्युत्तर। कोणाच्याही श्रमाचा भार। फुकट लवभार घेऊं नये।।२४६।। कोणाहीपासूनि घ्यावें काम। परि जाणावे तयाचे श्रम। लावावा जीवास ऐसा नियम। फुकट परिश्रम घेऊं नये।।२४७।। कोणीं जाणावें खरें इंगित। बाबा हें कां ऐसें करीत। हें तों तयांचें तयां अवगत। संतान्तर्गत अति गूढ।।२४८।। परिसतां मुखींचे उद्गार। तेच सर्वस्वी आम्हां आधार। ठेवितां तैसा वर्तन-निर्धार। चालेल व्यवहार सुरळीत।।२४९।। असो पुढील अध्यायाची गोडी। याहूनि आहे अति चोखडी। एका मोलकरिणीची पोर भाबडी। कोडें उलगडी श्रुतीचें।।२५०।। गणुदास प्रासादिक हरिदास। उपकार करावया प्राकृत जनांस। ईशावास्य-भाषांतरास। करावया कांस घातली।।२५१।। साईकृपें ग्रंथ लिहिला। परि कांहीं गूढार्थ राहिला। तेणें मनास संशय पडला। कैसा फेडिला बाबांनीं।।२५२।। बाबा वदत शिरडींत बसून। पारल्यास जैं जासील परतोन। काकांच्या घरची मोलकरीण। शंका समाधान करील।।२५३।। ईशावास्यपद्मपरिसरीं। रुंजी घालील वाग्देवी भ्रमरी। ते आमोद सेविती कळाकुसरी। श्रोतां चतुरीं भोगिजे।।२५४।। असो पुढील अध्यायीं हें कथन। कर्ता करविता साई दयाघन। श्रोतां यथावकाश श्रवण।

करावें कल्याण होईल।।२५५।। पंत हेमाड साईंस शरण। तैसाच भूतीं भगवंतीं लीन। श्रोतां देणें अवधानदान। साईनिवेदन गोड हें।।२५६।। स्वस्ति श्रीसंतसज्जनप्रेरिते। भक्तहेमाडपंतविरचिते। श्रीसाईसमर्थसच्चरिते। मदनुग्रहो नाम एकोनविंशोऽध्यायः संपूर्णः।।

।। श्रीसद्‌गुरुसाईनाथार्पणमस्तु।। शुभं भवतु।।